॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय

ध्यानबिन्दूपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ध्यानयोगकी महिमा तथा स्वरूप

यदि बहुयोजनविस्तीर्ण पर्वतके समान भी भारी पापराशि हो, तो भी वह ध्यानयोगके द्वारा नष्ट हो जाती है। (ऐसे महापाप) और किसी साधनसे कभी नष्ट नहीं होते॥ १॥

बीज (कारणभूत) अक्षर (मकार)-से परे बिन्दु है और बिन्दुसे परे भी नाद स्थित है, जिससे सुन्दर शब्दका उच्चारण होता है। शक्तिरूप प्रणव नादसे भी परे स्थित है तथा अकारसे लेकर शक्तिपर्यन्त प्रणवरूप अक्षरके क्षीण होनेपर जो शब्दहीन स्थिति होती है, वही 'शान्त' नामसे प्रसिद्ध परम पद है। जो अनाहत (बिना आघातके उत्पन्न, ध्यानमें सुनायी पड़नेवाला, मेघ-गर्जनके समान प्रकृतिका आदि-शब्द) है, उस शब्दका भी जो परम कारण—शक्ति है, उसके भी परमकारण सच्चिदानन्दस्वरूप शान्तपदको जो योगी प्राप्त कर लेता है, उसके समस्त संदेह नष्ट हो जाते हैं॥ २-३॥

बालकी नोकके पचास हजार भाग किये जायँ, फिर उस भागके भी सहस्र भाग करनेपर उस भागका भी जो अर्द्धभाग है, उसके समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म वह निरञ्जन (विशुद्ध) ब्रह्म है—यों जानना चाहिये। तात्पर्य यह कि वह अत्यन्त दुर्लक्ष्य परमतत्त्व है। जैसे पुष्पमें गन्ध व्याप्त रहती है, जैसे दूधमें घृत अलक्षित रहता है, जैसे तिलमें तेल अनुस्यूत रहता है, जैसे सोनेकी खानके पत्थरोंमें सोना अव्यक्त रहता है, उसी प्रकार वह आत्मा समस्त प्राणियोंमें छिपा है। निश्चयात्मिका बुद्धिसे सम्पन्न, अज्ञानरहित ब्रह्मवेत्ता (सूत्रकी) मणियोंमें सूत्रके समान आत्माको व्याप्त जानकर उसी ब्रह्मस्वरूपमें स्थित रहते हैं। जैसे तिलोंमें तेल व्याप्त है, जैसे फूलोंमें सुगन्ध व्याप्त है, वैसे ही पुरुषके शरीरके बाहर एवं भीतर सब ओर आत्मतत्त्व व्याप्त होकर स्थित है॥ ४—७॥

जैसे वृक्ष अपनी पूरी कलाके साथ रहता है और उसकी छाया वृक्षकी कलासे हीन रहती है, वैसे ही आत्मा अपने कलात्मक (स्व-सच्चिदानन्द) स्वरूपसे और निष्कल (छायास्थानीय जगद्रूप) भावसे सर्वत्र व्याप्त होकर अवस्थित है॥ ८॥

(उपर्युक्त आत्मस्वरूपकी उपलब्धि—अनुभूतिके लिये साधन निर्देश करते हैं कि विधिवत् आसनपर अवस्थित होकर) पूरकके द्वारा श्वासको भीतर खींचते हुए नाभिस्थानमें अतसी-पुष्पके समान नीलवर्ण, चतुर्भुज महावीर (भगवान् विष्णु)-का ध्यान करना चाहिये। कुम्भकके द्वारा—श्वासको भीतर रोके हुए हृदयस्थानमें लाल कमलकी कर्णिकापर विराजमान, लालवर्णके, चार मुखवाले लोकपितामह ब्रह्माजीका ध्यान करना चाहिये। रेचकके द्वारा श्वास छोड़ते समय ललाटमें विद्यास्वरूप, तीन नेत्रोंवाले, शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल रंगके, कलारहित, पापविनाशक भगवान् शङ्करका ध्यान करना चाहिये॥ ९—११॥

सुषुम्णापथमें उपर्युक्त तीनों कमलोंमेंसे नाभिस्थानका कमल आठ दलोंका है। हृदयस्थानका कमल ऊपर नाल एवं नीचे मुख करके अवस्थित है। ललाटमें

अवस्थित कमल केलेके फूलके समान नीललोहित (बैंगनी रंगका) है। ये तीनों कमल सर्वदेवमय हैं। इन तीनोंसे ऊपर मूर्धदेशमें एक और कमल है। उसमें सौ दल हैं। उस खिले हुए कमलकी कर्णिका विस्तृत है। उस कर्णिकापर पहले सूर्य, फिर उनके ऊपर चन्द्रमा और चन्द्रके ऊपर अग्नि—इस प्रकार एकके ऊपर एकका क्रमशः चिन्तन करे। क्योंकि वह कमल सुप्त है; अतः सूर्य, चन्द्र एवं अग्निके धारणके लिये ध्यानके द्वारा उसे पहले जाग्रत्—विकसित कर लेना चाहिये। उस पद्मपर स्थित बीजों (पचास अक्षरों)-का उच्चारण करके ही यह जीवात्मा बातचीत आदि व्यवहारका निर्वाह करता रहता है॥ १२—१४॥

(नाभि, हृदय एवं ललाट)—इन तीनों स्थानों तथा (अपनी उपासनाके पूरक, कुम्भक, रेचक)-रूप तीन मार्गोंवाले; विष्णु, ब्रह्मा एवं शिवरूपसे त्रिविध ब्रह्मस्वरूप; प्रणवरूपमें अकारादि तीन अक्षरोंवाले; उसी रूपमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंवाले तथा उनमें व्याप्त अर्धमात्रास्वरूप जो परमात्मा हैं, उनको जो जानता है, वही वेदके तात्पर्यका ज्ञाता है। इन तेलकी धाराके समान अविच्छिन्न, घंटेकी अनुरणनरूप ध्वनिके समान दीर्घकालतक ध्वनित होनेवाला तथा बिना वाणीके (प्राणोंद्वारा ही) उच्चरित बिन्दुपर्यन्त प्रणवके बाद प्रकट होनेवाले नादको जो जानता है, वही वेदोंको ठीक जानता है॥ १५-१६॥

प्रणव धनुष है, आत्मा ही बाण है एवं परब्रह्म परमात्मा उसके लक्ष्य हैं। प्रमादहीन साधकके द्वारा ही वह बेधा जाता है। अतः बाणकी भाँति उस लक्ष्यमें तन्मय हो जाना चाहिये। अपने शरीरको नीचेकी अरणि (यज्ञिय अग्निमन्थन-काष्ठ) बनावे और प्रणवको ऊपरकी अरणि बनावे। ध्यानाभ्यासरूपी मन्थन-क्रियाके द्वारा साधक काष्ठमें व्याप्त हुई अग्निकी भाँति सबके भीतर व्याप्त परमदेव परमात्माका साक्षात्कार करे॥ १७-१८॥

जैसे (बच्चे) कमलकी नालसे पानी धीरे-धीरे खींचते हैं, वैसे ही योगी योगावस्थामें स्थित होकर धीरे-धीरे प्राणोंको खींचे (अर्थात् स्वाधिष्ठान आदि चक्रोंका भेदन करते हुए प्राणको क्रमशः ऊर्ध्वभूमिकामें ले जाय)। जैसे किसान रस्सीद्वारा कुएँसे जल निकालता है, उसी प्रकार प्रणवकी अर्धमात्रा (अव्यक्त नादोच्चारण)-को रस्सी बनाकर हृदय-कमलरूपी कुएँसे नाल (सुषुम्णा)-मार्गके द्वारा जलरूपा कुण्डलिनीको भ्रूमध्यमें ले जाय। नासिकाकी जड़से लेकर दोनों भौंहोंके मध्यमें जो ललाट है, वहाँतक अमृत-स्थान समझना चाहिये। यही विश्वका महान् निवासस्थान (परमात्मपद) है। यही विश्वका महान् निवासस्थान (परमात्मपद) है।

॥ कृष्णयजुर्वेदीय ध्यानबिन्दूपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मत्वकी प्राप्ति

स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद॥

(बृहदारण्यक० ४।४।२५)

यह महान् आत्मा जन्मसे रहित, बुढ़ापेसे रहित, मृत्युसे रहित और भयसे रहित है। ब्रह्म अभय है, निश्चय ब्रह्म अभय है। जो इस प्रकार जानता है, वह निश्चय ही ब्रह्म हो जाता है।